CONTEMPORARY RESEARCH IN INDIA
ISSN 2231 - 2137

ग्राम्य-परिवेश में विमर्श की महागाथा है 'दुखमोचन'

डॉ. विश्वजीत कुमार मिश्र, *असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, राजीव गाँधी सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी, दोइमुख, अरुणाचल प्रदेश*

Received: 02/08/2017 | **Edited: 09/08/2017** | **Accepted: 16/08/2017**

शोध सारांश: *नागार्जुन कायहउपन्यास 'दु:खमोचन', ऐसे पिछडे गाँव की कहानी है जहाँ युगों से निश्चल और जड़ पड़ी हुई जिंदगी नये युग की रोशनी पाकर धीरे-धीरे जागर ही है। यह उपन्यास नागार्जुन की सजग परिवर्तनकारी दृष्टि का परिचायक है। माना कि गाँवो में स्थितियाँ तीव्र गति से न बदल पार ही हों, जिसका यहाँ संकेत यथार्थवादी दृष्टि से महत्वपुर्ण है। पर यहाँ का परिवर्तन नागार्जुन की अभीष्ट वही तीव्र और चतुर्दिक संभव होने वाला सामाजिक परिवर्तन है, जिसे वह इस उपन्यास में दिखा सके हैं। नागार्जुन को इस वास्तविकता का पता है कि ग्रामीण समाज अलग-अलग जातियों और वर्गों में विभाजित हैं, उन्हे इस का भी आभास है की संम्पन्न वर्ग के अपने-अपने स्वार्थ हैं और यह वर्ग से यदि सामाजिक परिवर्तन की धारा को रोकना चाहता है। किन्तु नागार्जुनकी दृष्टि में परिवर्तन का प्रवाह रुकता नहीं है इसलिए साहस और संकल्प से यदि परिवर्तन की दिशा निश्चित की जाय तो समाज में नयी स्थितियाँ संभव हो सकती हैं। इस परिवर्तन में स्त्री के अधिकार के प्रति पुरुष भी सचेत है, तभी तो राशन-गल्ला बाँटते हुए 'दुखमोचन' से 'बौधू' कहता है कि - "सरकार दू ठो नाम छूट गया है। दुखमोचन के इशारा करने पे बौधू जो नाम लेता है उसमें 'बुधनी' नामक महिला का नाम भी है। 'बौधू' के नजरमें 'बुधनी' को भी उतनी ही राशन सामग्री मिलनी चाहिए जितना सबको दिया जा रहा है। राम सागर और कुंचन को चमारों की विरादरी में अकाल पीडोतों का पता लगाने की जिम्मेदारी सौपीं गयी थी। रामसागर बौधू से डपटकर पूछता है- कौन बुधनी ? मोस्तम्मात है, बीमार रहती है बिचारी आगे-पीछे कोई नहीं है उसके, इस की पुष्टि करने के लिए बौधू पुन:बोलता है की - चिल-बिलसा बेटा है हजूर भूख के मारे नही रहा जा सकता है तो हाट-बजार के तरफ निकल जाती है और चार-चार, छ:-छ: दिन बाद लौटती है।"*

बीज-शब्द: *लोक-संवेदना, ग्राम्य-परिवेश, अन्त:पीडा, परम्परा, यथार्थ, अनुभूति, स्त्री-पीड़ा, विमर्श।*

साहित्यकार की रचना-भूमि चाहें जो रही हो कथा की बुनावट में उस रचना-भूमि से उपजी कथा-सूत्र-साम्रगी ही होती है। जो कथा मात्र नहीं होती वह तो भूमि में जीवन-यापन करने वाले जीवधारियों की व्यथा होती है, पीडा होती है। उस पीड़ा से पीड़ित जीवधारियों के अन्त:संवेदना से संवेदित हृदय जब हाहाकार कर उठता है तब उनके संवेद्य-भाव अश्रु में परिवर्तित हो जाते है। द्रवित हृदय रुदन कर उठता है। जो जितना रो सकेगा उसी रुदन-भाव-साम्य के साथ वही कथासूत्र को बुन पायेगा। उस सत्य से वही परिचित करा सकेगा। ऐसा ही बुनकर मिथिला की धरती पर कथा के यथार्य रूप के बुनता रहा; नाम था 'बाबा वैद्यनाथ मिश्र' 'यात्री' 'नागार्जुन'। जीवधारियों की व्यथा ? हाँ। जीवधारियों की व्यथा। 'बाबा' के द्वारा रचित साहित्य में सभी जीवधारियों की व्यथा है, चाहें 'कानी-कुतिया' हो 'कागा' हो या 'लहलहाती फसल' को देने वाला हल-चलता 'बैल' और उन बैलों को हाँकने वाला आदमी भी। सबका दु:ख। सबकी पीड़ा। दु:ख की अंतिम सीमा। लेकिन असमें कोई 'दुखमोचन' भी है।

नागार्जुन के उपन्यासों में 'दुखमोचन' भी उसी कथा-भूमि की व्यथा को दर्शाता है जहाँ कथाकार का भोगा यथार्य कथा में उतर आया है। एकदम जीवंत-रूप में। तभी तो आभा जायसवाल कहती हैं - "भारतीय साहित्य की परम्परा, मिथिला कोकिल विद्यापति का राग, कालिदास का सौन्दर्य, तुलसीदास का वैविध्य, कबीर और भारतेन्दु का व्यंग्य-विद्रोह, निराला की व्यापकता, केदारनाथ अग्रवाल की लोक-संवेदना, मुक्तिबोध् की बौध्दिकता के साथ युगबोध् को यदि एक साथ कहीं देखना है तो वह अकेले नागार्जुन में ही देखा जा सकता है। नागार्जुन इकलौते साहित्यकार हैं, जिन्होंने लोकजीवन जैसे गम्भीर विषय को लक्ष्य बनाया, जिसमें तात्कालिकता की समय-सीमा को खारिज किया। नागार्जुन इकलौते साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपनी जनपक्षधरता के लिए वैचारिक विचलन को भी स्वीकार किया। साहित्य की शास्त्रीय परम्परा से लेकर उपन्यास, नई कविता, नवगीत आदि तमाम आधुनिक् साहित्यिक प्रवृत्तियों को यदि एक साथ देखना है तो नागार्जुन के साहित्य में देखा जा सकता है। अनेकानेक भाषाओं और विधाओं में लेखनी चलाने वाला यह रचनाकार अदम्य शक्ति

और साहस का प्रतीक है। अरचनात्मक मानी जाने वाली वस्तुओं को नागार्जुन की लेखनी का पारस रचनात्मक ही नहीं, सौन्दर्यसिक्त और सार्थक बना देता है।"[१]

उनकी लेखनी का जादू साधारण नहीं है। क्रांतिकारी है। शक्ति से भरपूर है। यही कारण है कि शक्ति से हीन जनता भी उनकी लेखनी से सिक्त होकर उसी प्रवाह में परिवर्तन को रूप प्रदान करती है। डॉ. माहेश्वर की मान्यता है, "हिन्दी साहित्य में नागार्जुन एक मिथक का नाम है। एक जादू का नाम है, जो सबके सिर पर चढ़कर बोलता है। उनके भी जो उन्हें एक व्यक्ति और एक रचनाकार के रूप में पसंद करते है और उन दूसरे लोगों के भी जो उन्हें नापंसद करते हैं। 'मीडियाकर' बताते हैं और उनसे डरते हैं। नागार्जुन के मरने के बाद भी एक बेहद जिंदा और आतंकित करने वाला नाम है। एक शान-धरी छुरी का नाम है। बैद्यनाथ मिश्र किसी मिथक का नाम नहीं हो सकता, नागार्जुन एक ख़ास मिथक का नाम है।[२]

नागार्जुन का रचना संसार एक साथ दो धरातलों पर रचना कर्म करता है। एक-तरफ है प्रेम, सौंदर्य और प्रकृति; दूसरी तरफ सामाजिक, राजनीतिक दुर्व्यवस्थाओं, शोषण, अन्याय पर तीखी प्रतिक्रियात्मक व्यंग्य-विद्रूप आत्मचिंतन और आत्मविश्लेषण की मानसिकता रखने वाले बाबा का स्वाभव बेख़ौफ होकर अन्याय के विरुध्द ख़री-ख़री सुनाना स्वाभाविक था। तिलमिला देने की सीमा तक व्यंग्य का प्रहार करना उनके साहित्य का सबसे अलग और विशिष्ट पक्ष है। यह व्यंग्य सामाजिक दुर्व्यवस्थाओं और उससे सम्बंधित व्यक्ति विशेषों पर कहर के समान टूटता है। किन्तु नागार्जुन ने उन व्यक्ति विशेषों की प्रशस्ति भी की है, जिन्होंने लोक कल्याण, लोक चिन्तन में अपनी क्षमताओं का उपयोग किया। ऐसा भी हुआ कि जिस व्यक्ति की प्रशस्ति में रचना करते है, उसी को मानवीय मूल्यों से इतर कर्म करते हुए देखकर वे तीखी व्यंग्यात्मक प्रतिक्रिया भी करते हैं। किसी को आहत करने का उनका कोई इरादा नहीं, वे तो उस अगणित जनता के सुख दुखात्मक आवेग में प्रशस्ति और विरोध को जन्म देते हैं।[३]

नागार्जुन का 'दुख्रमोचन' उपन्यास भी कमाल का है। स्त्रीसा-विमर्श इन दिनों फैशन-लगता है, लेकिन नागार्जुन अपनी हर कथा में स्त्रीविमर्श करते हैं, सायाम करते हैं, पूरी प्रतिबद्धता के साथ। विधवा विवाह पर जोर देते हैं। बेमेल विवाह का विरोध करते हैं ओर स्त्री स्वातंत्र्य की वकालत करते हैं। नागार्जुन जिस परिवेश में पले बढ़े उस परिवेश से बाहर निकल कर वे जागरण का काम करते हैं। इस तरह नागार्जुन की कथाएँ नवजागरण की कथाएँ हैं। वे दकियानूसीपन के विरूद्ध कदम-कदम हस्तक्षेप करते हैं। अधिकांश रचनाओं में नागार्जुन कथाओं के बहाने व्यथाओं का वर्णन करते हैं और समाधान के रुप में विद्रोह की दिशा भी दिखाते हैं जिनकी और बहुत कम लेखकों का ध्यान जाता है। वास्तव में यह विचारणीय है। ग्राम्य-जीवन तथा ग्राम्य-परिस्थिति पर लेखनी उठाना रचनाकार के लिए ग्राम्य-साधना जैसा ही है।

परम्पराओं के जटिल बुनावट में फँसा मनुष्य समाज के लिए कल्याणकारी परंपरा का कुतर्कों से खंडन तो कर देता है किन्तु रूढियों में जकडे मन:स्थिति से अपने आप को उबार नहीं पाता दुख्रमोचन में विधवा माया विधुर कपिल से विवाह करना चाहती है। हमारा समाज अभी तक मध्ययुगीन सोच में ही फँसा दीखता है। नया सुधारात्मक पक्ष उसे रास नहीं आता। अपनी अपनी जाति के गौरव से अभिभूत लोग मरने-मारने पर उतारू हो जाते हैं। परंपरा उन्हें जिंदगी से बड़ी लगती है। जो हमारे लिए कष्टकारी होती है। जो समाज को कष्ट-साध्य स्थिति में पहुँचा देती है। जिसका शिकार आम जनता होती है।

"नागार्जुन के उपन्यास इसी तरह के रचनात्मक सुझाव देते हैं इसलिए मुझे वे बड़े सार्थक उपन्यास लगते हैं। जो कथाएँ समाज का सोच बदल सकें, वे ही सही कहानियाँ हैं। केवल सामाजिक विध्वंस दिखाना ही कौशल नहीं है, वरन सृजन का राग गाता भी कलात्मकता है। कथाकार नागार्जुन की खासियत यही है, कि वे सृजन के पक्ष धर हैं। उनके हर उपन्यास सकारात्मकता के साथ ख़त्म होते हैं। [४]

अध्ययन और अनुशीलन से यह ज्ञात होता है की वस्तुत : ग्रामीण जीवन एवं लोक की संस्कृति तो प्रकृति से ही स्वाभाविक एवं सरल होती है।

स्वाभाविकता एंव सरलता के मिश्रण से बनी संस्कृतिक मं ख्रान-पान वेष-भूषा, जीवन के संघर्षों के बीच से आस्था के बनते हुए मस्तूल तथा जीवन का दर्शन इसकी विशेषता बन जाती है। नागार्जून अपने अंचल से बाहर के किसी सांस्कृतिक पक्ष को कभी भी जोडने या चुनने नही जाते। यहाँ उनके अपनी ही ग्रामीण जीवन की महिमा मानवीय गुणों, समाज के साध्य लक्ष्यों एवं एक सामूहिकता में नजर आती कार्याविधियो में प्रकट होती हैं। "दुख्रमोचन का मामी ने ही पान ख्राना सिख्रलाया था। चार -पाँच साल के अपने कलकत्ता प्रवास में उन्होंने कभी कभार ही पान ख्राया होगा। बंगाली या उडिया पान से उन्हें विरक्ति थी। हाँ मगही पान का बनारसी विन्यास उन्हें अच्छा लगता था। मामी के मायकेवाले जिला पूर्णिया के सुखी-सम्भ्रांत काश्तकार लोग थे, जिनके यहाँ पान जर्दा रोजाना की ख्राक में शामिल था। इस परिवार में भी मामी ने पान ख्राने के कई चेले तैयार कर लिए"[५]

अत्यंत ही सरल भाव-बोध के साथ ग्राम्य-परिवेश की घटनाओं का वर्णन करते हुए नागार्जुन ने इस में कुछ भी अलग से जोडने या उसका परि मार्जन करने का प्रयास नहीं किया है, यही कारण है कि स्वाभाविकता नष्ट नहीं होती है उन्होंने वहाँ की जनता के स्वाभाविक व्यावहारिक पक्ष को दर्शाया है.

"पान की सीठी दबी पडी थी मुँह के अंदर ।उसे थूक कर नित्या बाबूने गला साफ किया। अब उन्हें लगा कि दुखमोचन पर इन बातों का रत्ती भर भी असर नहीं पडा। फिर उन्होंने

आखिरी तीर छोडा मडुवा-मकई ही जिन के लिए अच्छी किस्म का अनाज ठहरा उन्हें गेहूं देना बेकार होगा। वे ले तो लेंगे,

लेकिन मिटटी के भाव सारे दाने बेच डालेंगे। घूम फिर कर सहायता का वह गेहूँ सही जगहों पर आ ही जाएगा। विधाता ने गेहूँ और धान सब के लिए थोडे हि सिरजे हैं? "

इस वर्चस्ववादी समाज में जो वर्गीय- भावना है क्या वह समाज में समरसता की भावना का बीजारोपण कर पाएगी? क्या ऊँच-नीच की भावना से पूरित समाज का कभी विकास हो पाया है? प्रश्न तब भी था और अब भी है।

व्यक्ती जिस समाज का अंग होता है वही के परम्परानुकरण का सहभागी होता है। परिवर्तन या बदलाव की गति में एक लम्बा समय व्यतीत करना होता है।

सुधार की गति मंद होती ही जब तक सोच नहीं बदलती, तब तक वातावरण नही बदलता क्यों कि व्यवहार पक्ष का बडा ही महत्वपूर्ण योगदान होता है सामाजिक बदलाव के लिए। व्यक्ति अपने व्यवहारों,वेश-भूषा और जीवन की सामान्य परिस्थितियों को आसानी से छोडना नही चाहता। अधिकांशत: यही देखा जाता है कि अविश्वास और अफवाहों का बाजार लोक जीवन में बडा अहम रोल निभाता हैं "उसने बताया - पहली अफवाह तो यह है कि गेहूँ ऐसे हैं कि मशीन से इनका सत निचोड लिया गया है। गेहूँ नही,गेहूँ की सीठी है यह। दूसरी अफवाह है कि जो कोई भी गेहूँ लेगा, उसे जबरन कोसी नदी के किनारे ले जायेंगे; अफसर लोग उससे महीनों बिना मजदूरी के काम लेंगे।तीसरी अफवाह है कि अगले साल सरकार चार गुना ज्यादा वसूल कर लेगी...। [६]

भोली-भाली गाँव की जनता इन अफवाहों का किस प्रकार शिकार होती है। इसका सुन्दर उदाहारण अब इसके अलावा और क्या हो सक्ता है। दुखमोचनके बार बार समझाने के बाद भी जनता के मन में कुछ संशय शेष ही रह जाता है, वह पुन: प्रयास करता है- " दुख मोचन उठकर पहले पान की सीठी थूक आए, तब कहा, भाइयों। इस अनाज का खैरात ना समझना और ना गुलामी का चारा-चोंगा ही समझना इसको। यह तो एक किस्म की अगाऊ मजदूरी है, जिस के लिए आप सभी को अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार कभी न कभी काम करना होगा। आगे हम बाँध तैयार करेंगे, पोखरों की मरम्मत करेंगे, कुओं की खुदाई होगी, गाँव की तरक्की के दसों काम होंगे। एकजुट होकर हमें यह काम करना होगा।"

दुखमोचन के अन्दर सहज-संवाद-भाव हे जिसे वहाँ की जनता समझती है। दुखमोचन इस भ्रम के आधार को भी समझता है जिसे भोली जनता नहीं समझती। इसीलिए वह जन सामान्य के प्रति सेवक के रुप में कार्य करता है। जिसे अपना नागरिक - कर्तव्य समझ कर वह अनवरत जनता के अधिकारों का ज्ञान उन्हें करता रहता है। लोक जीवन के सीधे - सादे ह्रदय को समझने में उसे विलम्ब नहीं होता। वह अफवा हों को दूर करने के लिए गाँव के लोगोंको बार-बार समझाता है। तभी तो दुख मोचन के सन्दर्भ में कहा गया है "यदी लोक जीवन और लोक संस्कृति में ऐसे कुछ जड पकडे पीछे ठेलने वाले तत्व हैं तो वेही इसके सांस्कृतिक विकास के संतुलन को बिगाडने का काम भी करते हैं। इसके प्रमुख कारण हैं जड पकडी हुई रुढिवादिता। नागार्जुन 'दुखमोचन ' जैसे उपन्यासमें एक समग्र ' लोकसेवक " चरित्र का सृजन खास उदेश्य से करते देखते हैं जो वहाँ के हर असंतुलन, रुढि एवं ठहराव की मानसिकता को अकेले - दम, तोडने तथा उसे नए सिरेसे सजाने का दुरुह कार्य कर रहा है।"[७]

प्रफुल्ल कुमार मिश्र अपनेशोध - प्रबंध में कहते हैं - "दुखमोचन उपन्यास एक सामान्य वर्गीय उपन्यास है। जिसमें दुख मोचन पात्र के माध्यम से नागार्जुन ने एक साधारण व्यक्ति के लिए सोचा है, उस पर प्रकाश डाला है। इस में दुख मोचन एक मध्यवर्गीय पात्र है, जो इतना संवेदनशील है कि अपने दु:ख दर्द को भूलकर दूसरों की सेवा में ही लगा रहता है। इसी संवेदनाशीलता के कारण वह गाँव के लोगों के प्रति सेवा भाव में इतना तल्लीन रहता है जैसे प्रत्येक व्यक्ति का भार इस दुख मोचन के कन्धेपरही आ गया हो। दुखमोचन पात्र के माध्यम से नागार्जुन ने एक आदर्शवादी मगर कर्मशील चरित्र को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है।"८

नागार्जुन की विचार धारा समाज के दुहरे माप दण्डोंपर व्यंग करती है। नागार्जुन देख रहे हैं यह समाज अर्थप्रधान है, जिसके पास धन है उसके लिए कोई कायदा कानून नहीं, वह जो करे वही कायदा और कानून बन जाता है । लेकिन नागर्जुन के पात्र इन शास्त्रकारों से दो-दो हाथ करने को तैयार हैं। अपने हक के लिए क्रांति और विद्रोहकी चेतना उनमें उत्पन्न हो गई है। जमींदारो के खून पंजे तोडना और मरोडना, उनकी गन्दी दृष्टि को बंद करना वे जाने गए हैं।

नागार्जुन की लोक चेतना पीड रुपी सघन अन्धकारमें बिजली के समान कौंध जाती है यथार्थ का चित्रकण कर जाती है। जमींदारो की अथक सेवा करने पर भी क्षुधा की तृप्ति अधूरी ही रह जाती है, उस सभ्य समाज पर व्यंग करते हुए नागार्जुन उनकी दशा का मार्मिक वर्णन करते हैं। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में लोक-जीवन की अन्तरंग तस्वीरें एकत्र की हैं। इन उपन्यासों में वही सहज और समस्यापूर्ण जीवन है, जिसका साक्षात्कार स्वयं कथाकार ने किया है। तभी उनका लोकजीवन की अन्तरंग तस्वीरें एकत्र की हैं। इन उपन्यासों में वही सहज और समस्यापूर्ण जीवन है, जिसका साक्षात्कार स्वयं कथाकार ने किया है। तभी उनको लोक जीवन विश्वसनीय और प्रभाव पूर्ण हो सकता है। दुखमोचन एक गाँव की कहानी है। एक ऐसे पिछडे गाँव की कहानी जहाँ यूगोंसे निश्रच्छल पडी जिन्दगी नए युग की रोशनी पाकर धीरे धीरे जग रही है। लोक-जीवन के चितेरे कथाकार नागार्जुन ने अलग जातियों में बँटे उस ठेठ देहाती समाज का जीवंत चित्रण किया है जो आज भी अभावों और विवशताओं में जीता है। दुखमोचन एक छोटा मगर शक्तिशाली उपन्यास है। इसका नायक दुखमोचन नई युग-चेतनाका संवाहक है। अंध रुढियों और पुराने संस्कारों से ग्रस्त समाज में बदलाव लाने के लिए वह जो संघर्ष करता है, उसे कथाकार ने बडी मार्मिकता से चित्रित किया है। पीडितों और दलितों के रहबर के रुप में दुखमोचन की भूमिका जहाँ मन में प्रेरणा जगाती है, वहीं नित्या बाबु और त्रिजुगी चौधरी जैसे गाँव के इने-गिने संपन्न लोगों के फरेबों और कुचक्रों से रोष उत्पन्न होता है। एक नए निर्दोष युगारंभके लिए दुख मोचन एक प्रेरना स्त्रोत बनकर उभरता है। भारतीय समाज में नारी की स्थिति दूसरे दर्जे की रही है, विधवा नारी का जीवन तो अभिशाप माना जाता है। मातृसत्तात्मक समाज से पितृ सत्तात्मक समाज में संक्रमण अर्थात वर्ग विभाजन,जो सामंती समाज की प्रमुख विशेषता है, स`नारी के शोषण की शुरुआत होती है।उन्नीसवीं सदी के भारतीय नवजागरण काल में समाज सुधारकों ने नारी समस्याओं के प्रति जागरुकता का परिचय दिया था और विधवा - प्रथा, अनमेल विवाह,बाल विवाह तथा सती - प्रथा जैसी सामाजिक बुराइयों दूर करने के लिए प्रयत्न किये थे। 'दु:खमोचन' में नागार्जुन विधवा की समस्या का समाधान पुनर्विवाह में खोजते हैं। 'दु:खमोचन ' उपन्यास की माया का विवाह कुलीन मगर दरिद्र परिवार में हुआ था। उसका पति बाढ में उफनती हुई 'बूढी गंडक' पार करते समय भँवर में नाव उलटने से डूबकर मर गया था। वह ससुराल नहीं गई। वहाँ बूढी सासथी, आवारा देवर था, निर्वाह बडी मुश्किल से होता था। वह अपनी बडी भाभी के आग्रह से माय के में ही जम गई। विधवा माया विधुर कपिल के संपर्क में आती है। दोनों में स्नेह संपर्क बढ जाता है। वे दोनों विवाह कर ने की सोचते हैं। जब नागार्जुन वर्तमान समाज व्यवस्था की वास्तविकता की ओर संकेत करते है। तब अन्त कें नागार्जुन एक सार्थक टिप्पडी करते हैं कि दस-पाँच दकियानूसों को छोडकर बाकी लोगों का ऐसा ही विचार था । माया की माँ, जो प्राचीन संस्कारों में पली हूई थी,वह भी लडकी के जीवन को सूख्रमय देख्रने की लालसामें.....पुनर्विवाह का प्रस्ताव कबूल करने वाली माँ है। इस तरह नागार्जुन विधवा नारी के जीवन की समस्या का सही समाधान पुनर्विवाह में ख्रोजते हैं और एक क्रान्तिकारी दृष्टिकोण अपनाते हैं। दुख्रमोचन उपन्यास की कथा- संयोजन के केन्द्र दुख्रमोचन जैसे आदर्शवादी, मगर कर्मशील चरित्र को रख्रा गया है। कथानक में तीन प्रमुख्र घटनाओं की संयोजना की गई है। पहीली - गाँव में बाढ की स्थिति का वर्णन है, जिसमें बाढ- पीडितों कि सहायता की जाती है। दूसरी घटना गाँव में पक्की सडक का निर्माण तथा तीसरी-गाँव में आग में जल गए मकानों का पुन:निर्माण आदिप्रमुख्र घटनाएँ है। इन घटनाओं में क्रान्तिकारी और प्रतिक्रियावादी शक्तियां संघर्ष दिख्राया गया है। दूसरी तरफ मामा और कपिल के प्रेम प्रसंग कथानक की प्रमुख्र घटनाओं के साथ अनुस्यूतकिये गए हैं। कथानक विश्रृंख्रलित नहीं, वरन एक -सूत्रित, घटना और प्रसंगों में परस्परबध्द है। लेख्रक अपने उदेश्य में पूर्णत: सफल रहता है। नागार्जुन ने' दुख्रमोचन' उपन्यासकी कथा- संयोजन के केंद्र में दुख्रमोचन जैसे आदर्शवादी मगर कर्मशील चरित्र को रख्रा है। कथा संयोजन या शिल्प दृष्टीकोण से अगर जाय तो दुख्रमोचन उपन्यास में नागार्जून अपनी कथा संयोजन या शिल्प विधि का तरीका उसी प्रकार अपनाते हैं, जिस प्रकार 'बलचनमा' या 'बाबा बटेसरनाथ' में अपनाते हुए दिख्राई देते है। यानि दो विरोधी शक्तियों का संघर्ष। चाहे वह जमींदार-किसान-भूमिहीन का हो,चाहे साम्राज्यवादी शक्तियों और भारतीय जन के बीच का हो । ऐसा लगता है कि नागार्जून हर जगह इस प्रकार की शक्तियों का संघर्ष देख्र लेते हैं। शिल्प या संयोजना की यह विधि उनके उपन्यासों की एक साधारण और सरलसी विधि जान पडती है, लेकिन उपन्यास के सम्पूर्ण ढाँचे को यह आच्छादित कर मूलसंवेदना को बाधित करनेवाली नहीं है। वस्तुत: इसप्रकार के शिल्प या कथा संयोजन के तरीकों का सम्बन्ध नागार्जुन के जीवन दृष्टिसे वे शिल्प अथवा संरचना की उतनी परवाह करते दिख्राई नहीं पडते, जीतनी परवाह मूल कथ्य या विषय-वस्तुकी। इस प्रकार की टेक्नीक कथ्य के साथ-साथ आपने-आप चली आती है।९

'दुख्रमोचन' को पहले मानवीय करुणासे ओतप्रोत एवं सशक्त-जीवट वाले व्यक्ति के रुप में दिख्राया गया है। रामसागर की माँ के मरने पर पब सुख्री लकडी नहीं मिलती तो उसे अपने काठके

तख्ते याद आते हैं जो तख्तपोशों की तैयारी के लिए चीरे गए थे। साथ दुखमोचन का अपनी विधवा मामी या भाभी के प्रति सम्मान और सत्कार की भावना है, वह पुरुष-वर्चस्व और रुढियों के बंधन से स्त्रियो को बाहर निकालने का सजग प्रयास है। नागार्जुन बीच- बीच में ग्रामीण समाज व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनकी ओर संकेत भी किया है। जहाँ गाँव की बर्बाद हुई फसलों का दृश्य-चित्रभी अंकित है। अत्यंत विछडे ग्राम्य-परिवेश में जीवन या पन करनेवाली स्त्रियाँ अपने नेक नियति और सामाजिकता के कितनी सचेत हैं, इसका उदाहरण - हरखू की माँ है जो अकाल-पीडित राहत-कोषसे लिए गए अन्न को इसलिए वापस कर देती है, क्योंकि उसके घर २५ रुपये का मनिऑर्डर आ जाता है। स्त्रीका इतना सजग होना और इतना ईमानदार होना यह दर्शाता है कि नागार्जुन निश्चित रुप से स्त्री-जन- जागृति के प्रति आवाज बुलंद कर समाज को यह बताना चाहते हैं कि स्त्रियाँ अपनी सजगता से समाजको प्रत्यक्ष संकेत दे रहीं हैं कि समझ और ईमानदारी की सूझबूझ हममें भी वर्तमान परिस्थितिके प्रति पूर्ण भावना ओंके साथ उपस्थित है। इस उपन्यास में नागार्जून नें 'स्त्री समाज' को समाज में व्याप्त रुढियों से लढने का सन्देश दिया है। उन विद्रूपताओं से जूझनेका नया कौशल प्रदान किया है। तत्कालीन समाज में व्यात्प विधवा-विवाह जैसी समस्या के लिए समाधान को ढूँढ निकाल है। 'दुखमोचन' उपन्यासमें 'माया' का विवाह कुलीन मगर दरिद्र परिवार में हुआ था। 'माया' का पति गाँव में आई बाढ की विभीषिका का शिकार हो जाता है। वह बूढीगंडक की उफानको पार करते हूए नाव पलट ने के कारण मारा जाता है। माया ससुराल नहीं जाती है, वहां वृध्दा सास थीं एक देर था जो लम्पट और आवारा था, वहाँ निर्वाह करना बडा मुश्किकल था, इन परिस्थितियोंसे पूर्ण रुपेण परिचित 'माया' की भाभी आग्रह करके 'माया' को मायके में ही रोक लेती हैं। वह मायके में ही जमजाती है, किन्तु युवा वस्थामें विधवाहूई माया 'कपिल' नामक व्यक्ति के सपंर्क में आती है। कपिल की पत्नी का देहांत पहले ही हो चुका है। माया और कपिल का प्रेम-सम्बन्धदिन प्रति दिन और प्रगाढ होता चला जाता है। वह अपनी जीवन नैया को पार लगाने के लिए विवाह-बधंन में बँधने का प्रयास करती हैं। माया का यह प्रयास स्त्री चेतना के रुप में उभर कर सामने आया है। किन्तु दोनों को इसके लिए विरोध भी कम नहीं झेलना पडता है। तत्कालीन भारतीय समाज में विधवा- विवाह अत्यंत बुरा माना जाता था। उसके विरोधी भी सामने आ खडे होते हैं। 'नित्यानंदबाबू' और ' टेकनाथ' माया और कपिल के विवाह का विरोध करते हैं। वे तर्क देते हैं कि माया और कपिल का विवाह गाँव की प्रतिष्ठा से खिलवाड करने जैसा है।

इस प्रकार नारी जीवन के क्रांतिकारी रुप की विषद व्याख्या करता 'दुखमोचन' उपन्यास नारियों के द्वारा सामाजिक सरोकार में ली गई हिस्सेदारी को भी दर्शाता है। यहाँ नारी के चैतन्य स्वरुप का भी विशेष वर्णन है, जहाँ स्त्रियों में जागरुकता उत्पन्न कर क्रांतिकारी - विचारधाराओं के संपर्क में आने का पुरजोर संकेत है। स्त्रियाँ केवल अपने अधिकारों के प्रति ही सचेत नही हैं, वल्कि अपने कर्त्तव्य के प्रति भी जागरुक हैं। इस क्रांतिकारी अवधारण के साथ नागार्जुन जी नारी समाज के लिए एक बहुत बडा विमर्श लेकर खडे होते हैं जो वास्वव में नारियों के प्रति एक उच्चादश ंकी स्थापना करते है। यहाँ नारी गिडगिडाती नहीं है, वह समाज में अपनी क्रांतिकारी सक्रियता से पुरुष-वर्चस्व को तोडने का कार्य करती है। यहाँ ता पुरानी-पीढी की मूल्यों के प्रति सचेत हरखू की माँ नयी पीढी में मूल्यात्मक स्थापना की घोषणा करती है जो लाख अभावों के होते हुए भी जीवन की संचित ईमानदारी को खोना पसंद नहीं करती, स्त्री - जगत की यह चेतना केवल स्त्री समुदाय की ही नहीं बल्कि पूरे समाज को व्यक्ति - चरित्र के रुप में एक नया विमर्श प्रदान करती है।

सन्दर्भ -

१. डॉ. आभा जायसवाल: नागार्जुन के उपन्यासों में लोकजीवन, पृष्ट-२-३,
२. वर्तमानसाहित्य, अक्टूबर-१९९९, पृष्ट-१४
३. डॉ. प्रणव: नागार्जुन के उपन्यासों में व्यंग्य, पृष्ट-३९
४. 'अभिव्यक्ति'- साहित्यिक निबंध- 'नागार्जुनकाकसाहित्य' - गिरीश पंकज - जून २०११
५. दुखमोचन पृष्ट-२१, नागार्जुन रचनावली भाग-४ संपादक शोभाकांत (राजकमल प्रकाशन)
६. दुखमोचन: पृष्ट-३७ नागार्जुन रचनावली भाग-५ संपादक- शोभाकांत (राजकमल प्रकाशन)
७. 'अपनीमाटी': (ISSN२३२२-२७२४) वर्ष-२ अकं-१५, जुलाई-सितम्बर-२०१४
८. डॉ.प्रफुल्ल कुमार मिश्र (शोध: नागार्जुन के उपन्यासों की कथा भूमि, अध्याय -४, पृष्ट-२१०)
९. "नागार्जुन का उपन्यास साहित्य: सम सामयिक सन्दर्भ" -डॉ. सुरेन्द्र कुमारयादव - पृष्ट-१७२,१७३ वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.